कामिल शफ़ाअत

मैं क्यों अल-मसीह का पैरोकार हो गया

इमादुद्दीन

कामिल शफ़ाअत

मैं क्यों अल-मसीह का पैरोकार हो गया

इमादुद्दीन

kāmil shafāat. maiṅ kyoṅ al-masīh kā pairokār ho gayā.

Perfect Intercession. Why I Became a Follower of al-Masih

by Imad ud-Din
(Urdu—Hindi script)

© 2018 Chashma Media
published and printed by
Good Word, New Delhi

Bible quotations are from UGV.

for enquiries or to request more copies:
askandanswer786@gmail.com

हमारे बुज़ुर्ग हाँसी शहर के बाशिंदे थे। लेकिन लोग ज़्यादा यह जानते हैं कि हम पानीपत के रहनेवाले हैं। इसकी यह वजह है कि मेरे दादा मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल जायदाद के ख़त्म होने पर हाँसी से उठकर शहर पानीपत में आ बसे थे। मेरे दादा इसलिए यहाँ आए कि ग़ुलाम मुहम्मद ख़ान अफ़ग़ान इस शहर के बड़े रईस थे। ग़ुलाम मुहम्मद अमीर-कबीर आदमी थे। उन्होंने मेरे दादा को अपनी रिफ़ाक़त में रख लिया था। वह उनकी फ़ज़ीलत के बाइस उनकी बहुत ताज़ीम करते थे। यही वजह है कि मेरे दादा ने अपनी ज़िंदगी इसी शहर में अच्छी इज़्ज़त से इस्लाम की पैरवी में बसर की।

मेरे वालिद मौलवी सिराजुद्दीन आज तक उसी शहर में बैठे हैं। हम चार सगे भाई थे। छोटा भाई मुईनुद्दीन मर गया। सबसे बड़े भाई मौलवी करीमुद्दीन हैं जो कि इस ज़माने में बहुत बड़े मुसन्निफ़ और फ़ख़्रे-ख़ानदान हैं। उनसे छोटे भाई मुंशी ख़ैरुद्दीन हैं। उनसे छोटा मैं हूँ। नाम मेरा इमादुद्दीन है।

आगरा गवर्नमेंट कॉलेज में तालीम

पंद्रह साल की उम्र में घर को छोड़कर इल्म हासिल करने के लिए आगरा में गया। वहाँ मेरे भाई मौलवी करीमुद्दीन गवर्नमेंट कॉलेज में उर्दू के पहले प्रोफ़ेसर थे। उनकी ख़िदमत में बहुत दिनों तक रहकर तालीम पाई। इल्म पढ़ने का मेरा सिर्फ़ एक मक़सद था कि किसी तरह अपने ख़ुदावंद को पाऊँ। क्योंकि वाज़ों से सुना था कि इल्म के बग़ैर ख़ुदा की पहचान हासिल नहीं हो सकती।

उन दिनों में जब भी फ़ुरसत मिलती तो मैं फ़क़ीरों और आलिमों की ख़िदमत में जाकर दीन का फ़ायदा हासिल किया करता था। मसजिदों, ख़ानक़ाहों और मौलवियों के घरों पर भी जा जाकर फ़िक्ह-तफ़सीर, हदीस, मंतिक़ और फ़लसफ़ा वग़ैरा सीखा करता गो मैंने अभी दीनी उलूम कुछ हासिल नहीं किए थे।

पहला शक

उन दिनों में कई ईसाइयों की सोहबत के सबब मुझे अपने दीन पर शक पड़ गया। मेरे दोस्त मौलवी सफ़दर अली उन दिनों में कॉलेज के अंदर थे। वह बड़े कट्टर मुसलमान थे जिनकी ईमानदारी, रास्तबाज़ी, नेककिरदारी और इलमी लियाक़त का मैं गवाह हूँ। उन्होंने मेरे दिल के शुकूक मालूम करके बड़ा अफ़सोस किया और

मुझे कहा कि देख तू गुमराह हो गया है। अभी तूने दीन की किताबें नहीं पढ़ीं। ईसाइयों ने तुझे गुमराह कर दिया है। यह ख़याल दिल से दूर कर और दीन की किताबें ग़ौर से पढ़कर देखो कि कौन हक़्क़ पर है।

यह मौलवी सफ़दर अली मुझे अपने साथ मौलवी अब्दुल-हलीम के पास ले गए। अब्दुल-हलीम दीन के बड़े फ़ाज़िल और वायज़ थे। मैंने अपने एतराज़ात उनके सामने पेश किए। अगरचे वह मेरे एतराज़ों के जवाब तो न दे सके तो भी उन्होंने क़ुरआने-मजीद की कई एक आयात पढ़कर मुझे सुनाईं और ख़फ़गी भी बहुत-सी ज़ाहिर की। इसलिए हम दोनों उदास होकर उनके पास से उठ आए और उस दिन से इसका ख़याल छोड़कर सिर्फ़ इल्म हासिल करने में कोशिश करनी शुरू कर दी। सब ख़यालात छोड़कर रात-दिन पढ़ना शुरू किया। इसी तरह आठ दस बरस गुज़र गए। चूँकि मैं हर इल्म को ख़ुदावंद के पहचानने का वसीला जानकर पढ़ता था इसलिए जिस क़दर वक़्त इस काम में ख़र्च होता मैं इसको इबादते-इलाही समझता था।

सूफ़ियों की नई राह

जब मैं इस्लामियात से भरपूर हो गया तो मैंने डाक्टर वज़ीर ख़ान के वसीले से एक नया रास्ता इख़्तियार कर लिया। वज़ीर ख़ान सब असिस्टंत सरजन मुक़र्रर होकर आगरा में आए थे। वह बड़े कट्टर मुसलमान थे। साथ साथ वह सूफ़ियों के दायरे में भी आ गए थे।

मैं भी इस बातिनी इल्म में फँस गया। कम बोलना, कम खाना, लोगों से अलग रहना, जिस्म को दुख देना और रातों को जागना इख़्तियार कर लिया। तमाम तमाम रात क़ुरआने-मजीद पढ़ने लगा। क़सीदाए-ग़ौसिया का अमल जारी कर दिया। चहल-काफ़ और हिज़्बुल-बहर पढ़ा करता। मुराक़बा मुजाहदा किया करता। ज़िक्रे-जहरीओ-ख़फ़ी जारी कर दिया। आँखें बंद करके तनहाई में बैठकर ख़याल में लफ़्ज़ अल्लाह दिल पर लिखने लगा। बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर बैठकर मुराक़बा किया करता ताकि कश्फ़े-क़ुबूर मिल जाए। वज्द की मजलिसों में बड़े ईमान से सूफ़ियों का मुँह तकता हुआ बैठा करता ताकि उनसे फ़ैज़ पाए। मस्तों-मजज़ूबों के पास ख़ुदा से मिलाने की इल्तिजा लेकर जाया करता। पाँच नमाज़ के सिवा तहज्जुदे-इशराक़ और चाश्त भी पढ़ा करता। दुरूदो-कलिमा बहुत पढ़ा करता। ग़रज़ जो जो मुसीबतें और दुख इनसान की ताक़त के हैं सब उठाए और इंतहा दर्जे तक इन मशक़्क़तों को पहुँचा दिया। मगर हरगिज़ तसल्ली न पाई।

आगरा की मसजिद में वायज़

इसी अरसे में जब यह सब कुछ कर रहा था तो डाक्टर वज़ीर ख़ान, मौलवी मुहम्मद मज़हर और दीगर बुज़ुर्गों ने मुझे आगरा की बादशाही जामे मसजिद में क़ुरआनो-हदीस का वाज़ करने के लिए मुक़र्रर कर दिया ताकि पादरी फ़ैंडर का मुक़ाबला करूँ। तीन साल तक वाज़ करता रहा। तफ़सीरें और अहादीस वग़ैरा सुनाता रहा।

शफ़ाअत की तलाश

मगर सूराए-मरियम 71 हमेशा मेरे दिल में काँटा सा चुभा करती थी, जिस में फ़रमाया गया है कि हर बशर ज़रूर एक बार दोज़ख़ में जाएगा। यानी ख़ुदा के ऊपर फ़र्ज़ है कि सबको एक बार तो दोज़ख़ में ज़रूर ले जाए और इसके बाद जिसको चाहे बख़्शे। यह आयत उलमा को बड़े उलझन में डाल देती है, और वह तरह तरह इसका हल निकालते हैं।

इसके अलावा शफ़ाअत के बारे में क़ुरआने-मजीद की कोई आयत ऐसी नहीं है जिससे किसी तरह की उम्मीद दिल में रख सकें। मैं जब इस मामले पर ग़ौर करता तो बड़ा हैरान रहता था। हाँ, अलामा जलालुद्दीन सुयूती ने एक रिसाला इस मज़मून पर लिखकर इस दावा का सबूत अहादीस से दिया है कि पैग़ंबरे-

इस्लाम शफ़ाअत करा देंगे। यह रिसाला पढ़कर मैं अपने दिल को कुछ तसल्ली देता था। अलबत्ता उस वक़्त मुझे मालूम नहीं था कि यह अहादीस ग़ैरमोतबर हैं।

ऐसी फ़िकरों के जवाब में मैं हद से ज़्यादा इबादत करके दिल को तसल्ली दिया करता था। तनहाई में जाके रो रोकर अपनी मग़फ़िरत की दुआ किया करता। शाह अबुल-उला की क़ब्र पर छुप छुपकर आधी रात वहाँ गुज़ारी। बो अली कलंदर के मज़ार पर और निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह में और अकसर बुज़ुर्गों के मक़बरों पर बड़े शौक़ से इल्तिजा लेकर जाया करता। मुसाफ़िर फ़क़ीरों और शहर के सूफ़ियों के वसीले से ख़ुदा से मिलाने की दरख़ास्त किया करता।

क़रौली में तारिकुद-दुनिया

उसी वक़्त यह ख़याल दिल पर सवार हुआ कि दुनिया को तर्क करूँ। मैं सबको छोड़-छाड़कर जंगल को निकल गया। हाँ, मैंने गेरू के रँगे हुए कपड़े पहन लिए और फ़क़ीर बनकर शहर शहर गाँव गाँव इधर-उधर बेसरो-सामान तक़रीबन दो हज़ार कोस पैदल फिरा। बेशक मेरी नीयत पूरे तौर पर ख़ुलूस नहीं थी, लेकिन मैं सिर्फ़ ख़ुदा ही का तालिब था। इसी हालत में मैं क़रौली शहर पहुँच

गया। वहाँ एक पहाड़ है जिसके अंदर एक नदी बहती है। मैं वहाँ हिज़्बुल-बहर का अमल पूरा करने को बैठ गया।

उस वक़्त मेरे पास एक किताब थी जो मेरे पीर की तरफ़ से मिली थी। उस में सूफ़ियों की तालीमात और विर्दो-वज़ाइफ़ के तौर-तरीक़े लिखे हैं। मैं उस किताब को सबसे ज़्यादा प्यारा जानता था यहाँ तक कि सफ़र में रात को साथ लेकर सोता था। जब मेरी तबीयत घबराती तो उस किताब को छाती से लगाकर दिल को आराम देता। मैंने कभी किसी को वह किताब न दिखाई, क्योंकि पीर साहब ने मना कर दिया था और कहा था कि इसका भेद किसी से न कहना; पूरी अबदी सआदत इस में है। पस मैं उस किताब को लेकर नदी पर बैठ गया और हिज़्बुल-बहर का अमल पूरा करने लगा।

दुआ के पढ़ने का तरीक़ा यह है कि बंदा बेसिला कपड़ा पहनकर बारह दिन तक बा-वुज़ू एक घुटने एक जगह पर बहती नदी के किनारे बैठकर बुलंद आवाज़ के साथ तीस बार रोज़ाना पढ़े, दुनिया की कोई चीज़ न खाए, नमक का खाना भी न खाए बल्कि सिर्फ़ हलाल की कमाई का जौ का आटा लाकर अपने हाथ से रोटी पकाए। लकड़ी भी ख़ुद जंगल से लाए, जूता भी न पहने, नंगे पाँव रहे। इसके साथ रोज़ा भी रखे, दिन से पहले दरिया में ग़ुस्ल भी करे। किसी आदमी को न छुए बल्कि मुअय्यना वक़्त के सिवा किसी से बात भी न करे।

मक़सद यह था कि ख़ुदा से वस्ल हो जाए। इसी लालच में मैं ने यह दुख उठाया। इसके अलावा सवा लाख बार लफ़्ज़ अल्लाह भी उसी हाल में काग़ज़ पर लिखा। रोज़ाना क़ैंची से हर लफ़्ज़ अलहदा अलहदा कतरके आटे की गोलियों में लपेटकर दरिया की मछलियों को खिलाता था। यह अमल भी उसी किताब में लिखा था। दिन-भर यह काम करता। रात को आधी रात सोता, आधी रात बैठकर लफ़्ज़ अल्लाह ख़याल के अंदर दिल पर लिखकर ख़याल की आँख से देखा करता। इस मशक़्क़त के बाद जब वहाँ से उठा तो मेरे बदन में ताक़त न रही। रंग ज़रद हो गया। मैं हवा के सदमे से अपने आपको थाम नहीं सकता था।

शहर के मुरीद

ताज मुहम्मद ख़ज़ानची और राजा क़रौली के साथी फ़ज़ल रसूल ख़ान ने मेरी बहुत ख़िदमत की और मेरे हाथ पर मुरीद हुए। शहर के अंदर बहुत-से लोग भी आकर मुरीद हुए। रुपया-पैसा भी मुझे बहुत दिया और निहायत ताज़ीम करने लगे। मैं जब तक वहाँ रहा हमेशा गलियों और घरों और मसजिदों में क़ुरआने-मजीद का वाज़ सुनाता रहा। नतीजे में बहुत लोगों ने गुनाह से तौबा की। मुझे

अल्लाह के औलिया में से ख़याल किया जाता था। अकसर लोग आकर क़दमों को हाथ लगाते थे।

तमाम मज़हबों से तंगी

लेकिन मेरी रूह ने आराम न पाया बल्कि दिन बदिन ख़ुद बख़ुद तजरिबाकारी के सबब शरीअत से मुतनफ़्फ़िर होने लगी। एक दिन मैं वहाँ से दो सौ कोस का सफ़र करके वतन में आया। यहाँ आकर विर्दो-वज़ाइफ़ से तबीयत खट्टी हो गई। उन आठ-दस साल के दौरान कई क़िस्म के बुज़ुर्ग, मशायख़, मौलवी और फ़क़ीर मिले थे। उनका चाल-चलन, उनके दिल के तसव्वुरात, उनका तास्सुब, उनकी फ़रेबबाज़ियाँ और जहालतें देखकर मुझे यक़ीन हो गया था कि कोई भी मज़हब जहान में हक़्क़ नहीं है।

पहले मैं समझता था कि इस्लाम सारे जहान के दीनों से अच्छा है, क्योंकि ईसाई दीन को तो मौलवी रहमतुल्लाह, आले-हसन और वज़ीर ख़ान वग़ैरा ने अपने ख़याल में बातिल साबित कर दिया है। वह बड़ा मुबाहसा जो पादरी फ़ैंडर से उलमा ने आगरा में किया था मैं भी उस में मौजूद था। जो किताबें मुसलमानों ने ईसाई दीन के रद्द में लिखी हैं उन्हें मैं सरसरी नज़र से पढ़ चुका था। इसलिए मैं ईसाई दीन को बातिल समझता था बल्कि हमेशा अपने वाज़ में अपने

शागिर्दों को उस दीन के नुक़सान दिखाया करता था। यहाँ तक कि एक दिन जब दो बड़े ईसाई अफ़सर मौलवी करीमुद्दीन के साथ वाज़ सुनने को आगरा की जामे मसजिद में आए तो ऐसा तास्सुब मेरे अंदर था कि मैंने उन हाकिमों के सामने भी अपने आपको न रोका बलकि ईसाई दीन की मज़म्मत सुनाता रहा। ग़रज़ ईसाई दीन का मैं बड़ा मुख़ालिफ़ था।

लेकिन मेरे कड़वे तजरिबे के बाइस अब दिल में आ गया कि सब मज़हब वाहियात हैं। जिस्म को आराम देना चाहिए, सबके साथ भलाई करना और सिर्फ़ ख़ुदा को अपने दिल में एक जानना बेहतर है। इन्हीं बेहूदा ख़यालात में मैं छः बरस तक मुब्तला रहा।

लाहौर में नौकरी और हाले-ज़ार

कुछ देर के बाद मैं लाहौर आया। जब लोगों ने मेरा हाल शरीअत के ख़िलाफ़ पाया तो वह मुझ पर इलज़ाम लगाने लगे हालाँकि अभी तक मैं इस्लाम को हक़्क़ जानता था अगरचे उसकी शरीअत का पाबंद न था। लेकिन कभी कभी जब मुझे अपनी मौत और ख़ुदावंद की अदालत का दिन और इस जहान को छोड़ जाने का वक़्त याद आता तो मेरी रूह अपने आपको निहायत ख़ौफ़ो-ख़तर के मकान में अकेला, बेबस, लाचार और आजिज़ खड़ा हुआ पाती थी। इसी

वास्ते एक ऐसा इज़्तिराब मेरे दिल में पैदा होता था कि अकसर मेरे चेहरे पर ज़रदी रहा करती थी और मैं बेक़रार होकर बाज़ औक़ात तनहाई में जाकर ख़ूब रोया करता था। बाज़ औक़ात मैं डाक्टरों से कहा करता कि मुझे कोई ऐसा मरज़ है कि मेरा दिल बेक़रार होकर मुझे बेइख़्तियार कर देता है। शायद कभी मैं अपने आपको न मार डालूँ। मैं बहुत घबराता हूँ। जब मैं रो लेता हूँ तब मुझे आराम आता है। डाक्टर मुझे कुछ कुछ दवाएँ पिलाया-खिलाया करते थे, पर आराम न होता था और ग़ुस्सा मुझ में बहुत था।

लाहौर में आकर मैं मिस्टर मैकिनताश हैड-मास्टर नॉर्मल स्कूल लाहौर की ख़िदमत में रहने लगा। मैकिनताश दीनदार फ़ाज़िल हैं।

सफ़दर अली से मुबाहसा करने का इरादा

एक दिन जबलपूर से ख़बर आई कि मौलवी सफ़दर अली हज़रत ईसा के पैरोकार हो गए हैं। मैंने बड़ा ताज्जुब किया। चंद रोज़ तक तो मौलवी सफ़दर अली को बुरा कहता फिरा। मेरे दिल में उनके बारे में तरह तरह के बुरे ख़यालात आते रहे, लेकिन बार बार यह ख़याल भी आता था कि मौलवी सफ़दर अली जो सच्चा रास्तबाज़ था उसने यह क्या काम किया कि अपने मज़हब को छोड़ दिया? ऐसा क्यों नादान हो गया? फिर मैंने इरादा किया कि मौलवी सफ़दर

अली से ख़ुतूत के ज़रीए मुबाहसा शुरू करना चाहिए। मगर मैं बड़ी ईमानदारी से बेतास्सुब होकर यह काम करूँगा।

इसी नीयत से मैंने इंजीलो-तौरेत मँगवाई और साथ साथ ईसाई दीन के ख़िलाफ़ की किताबें भी जमा कीं। मैकिनताश से मैंने कहा कि आप बराहे-मेहरबानी मुझे इंजील को समझाकर पढ़ाएँ। उन्होंने बड़ी ख़ुशी से पढ़ाना शुरू कर दिया।

इंजीले-शरीफ़ पढ़ने से तबदीली

मत्ती की इंजील के सातवें बाब तक पढ़कर मुझे अपने मज़हब पर शक पड़ गया। फिर तो ऐसी बेक़रारी पैदा हुई कि सारा सारा दिन और अकसर तमाम तमाम रात किताबों का मुतालआ शुरू कर दिया। साथ साथ पादरियों और मुसलमानों से ज़बानी भी बातें करने लगा। एक साल के अंदर रात-दिन की मेहनत से मैं ने दरियाफ़्त कर लिया कि सिर्फ़ ईसाई दीन से नजात है।

दीनी भाइयों का जवाब

जब मैंने यह मालूम कर लिया तब मुसलिम आलिमों से जो मेरे दोस्त और लवाहिक़ हैं सब हाल बयान किया। बाज़ ख़फ़ा हुए

और बाज़ों ने सब मेरे दलायल तनहाई में बैठकर सुने। मैंने उनसे कहा या तो इन दलायल के ठीक ठीक जवाब दो, वरना तुम भी मेरे साथ ईसाई हो जाओ। उन्होंने साफ़ कह दिया कि हम आपकी बात मानते हैं, लेकिन क्या करें। दुनियावी ख़ौफ़ और जाहिलों की लान-तान से हमको डर मालूम होता है। दिल में तो हम ज़रूर अल-मसीह को सच्चा जानते हैं। यह भी हम जानते हैं कि वही हमारी शफ़ाअत कर सकते हैं। मगर हम अपनी दुनियावी इज़्ज़त खोना नहीं चाहते। तुम भी अपना ईमान ज़ाहिर न करो। ज़ाहिर में मुसलमान कहलाओ, दिल में अल-मसीह पर ईमान रखो। बाज़ों ने कहा कि मसीह का मज़हब तो दुरुस्त और अक़्ल के मुवाफ़िक़ है, मगर तसलीस और इब्नुल्लाह हमारी समझ में नहीं आता। इसलिए हम उसे इख़्तियार नहीं करते। बाज़ों ने कहा कि हमको ईसाइयों की कुछ जिस्मानी रस्में पसंद नहीं आतीं, इसलिए हम ईसाई नहीं होते।

तब मैंने उन सबको ख़ुदा के सपुर्द किया और उनके हक़्क़ में दुआ के सिवा और कुछ चारा न जाना। मैंने अमृतसर जाकर राबर्ट क्लार्क के हाथ से बपतिस्मा ले लिया। वजह यह थी कि क्लार्क ने सबसे पहले मुझे खत भेजकर ख़ुदावंद का पैग़ाम पहुँचाया। उनकी दीनदारी और सरगरमी से भी मैं बहुत ख़ुश हुआ।

रूह का आराम

जब से मैं ईसा अल-मसीह के फ़ज़ल में दाख़िल हुआ हूँ मेरी रूह को बहुत आराम है। इज़तिराब और बेक़रारी बिलकुल जाती रही। चेहरे की ज़रदी भी ज़ाइल हो गई। अब किसी वक़्त भी मेरा दिल नहीं घबराता। कलामे-इलाही के पढ़ने से ज़िंदगी की लज़्ज़त हासिल होती है। मौत और क़ब्र के ख़ौफ़ की बीमारी से आराम मिल गया है। अपने ख़ुदावंद में बहुत ही ख़ुश हूँ। उसके फ़ज़ल में रूह हर वक़्त तरक़्क़ी करती है। ख़ुदावंद दिल को आराम देता है। दोस्त-आशना, शागिर्द, रिश्तेदार वग़ैरा सब दुश्मन हो गए हैं। हर कोई हर वक़्त हर तरह से दुख देना चाहता है। मगर मैं ख़ुदावंद से तसल्ली पाकर कुछ परवा नहीं करता। क्योंकि जिस क़दर बेइज़्ज़ती और दुख ख़ुदावंद के लिए मिलता है उसी क़दर रूह को आराम, तसल्ली और ख़ुशी हासिल होती है।

सात साल के बाद पाँच तजरिबे

अब सात साल गुज़र चुके हैं। मज़ीद कुछ तजरिबात हासिल हुए हैं।

अव्वल, जब से मैं ईमान लाया कभी मेरा दिल इस दीन की तरफ़ से सुस्त नहीं हुआ बल्कि ख़ुशी रोज़ बरोज़ ज़्यादा होती गई। उस

वक़्त से मैं रात-दिन इसके उसूल पर बेतास्सुब ग़ौर करता आया हूँ। अगर यह दीन ख़ुदा की तरफ़ से न होता और मैं फ़रेब खाकर इस में आ जाता तो इस सात बरस के अरसे में ज़रूर कहीं न कहीं कोई ऐसी बात निकलती जिससे मेरे दिल में सुस्ती आ जाती। लेकिन यहाँ तो शुक्रगुज़ारी और तसल्ली बढ़ती गई और उसकी क़ीमत रोज़ बरोज़ मेरी नज़रों में ज़्यादा हुई।

दूसरा तजरिबा यह है कि वह ख़ुशी जो मैंने मसीह में होकर हासिल की है उसे दूर करनेवाली कोई चीज़ मैंने नहीं पाई। इस अरसे में दुनिया के लोगों ने तक़रीर से, तहरीर से, इशारे से, बेइज़्ज़ती से तरह तरह के दुख मेरे दिल को पहुँचाए और क़िस्म क़िस्म के एतराज़ात भी पैदा करके मुझे सुनाए बल्कि दहरियों तक की बातें भी पेश कीं। जिस्मानी और रूहानी मुसीबतों ने भी बार बार मुझे हुजूम किया। बल्कि इस जहान की ख़ुशियों ने भी कई बार मुझे आ घेरा और चाहा कि इस ख़ुशी को भूल जाऊँ। लेकिन कोई भी चीज़ उस ख़ुशी को जो मैंने मसीह से पाई है ज़रा भी हिला न सकी, हालाँकि मैंने हिला देनेवाली चीज़ों को हमेशा दिल में आने दिया ताकि अपनी ख़ुशी को उस पर परखूँ। यह ख़ुशी ऐसी मज़बूत है कि कोई चीज़ उसे हिला नहीं सकती। यह बात भी नहीं है कि मैंने इस ख़ुशी को ख़ुद पकड़कर दिल में पाला हो। नहीं बल्कि ऐसी ख़ुशी ने मुझे ख़ुद पकड़ा है कि मैं उसके पास से कहीं नहीं जा सकता। क्योंकि जब उसकी जुदाई ऐन हक़ीक़ी मौत नज़र आती

है तो उसके पास से कहाँ जाऊँ? इसलिए उसने मुझे पकड़ा है, न मैंने उसको। क्या ही ख़ूब है पतरस का वह क़ौल,

> ख़ुदावंद, हम किसके पास जाएँ? अबदी ज़िंदगी की बातें तो आप ही के पास हैं। (यूहन्ना 6:68)

तीसरा तजरिबा यह हुआ कि जिस क़दर मसीह की पहचान बढ़ती जाती है उसी क़दर अपनी पहचान भी बढ़ती है। उसकी पाकीज़गी, बुलंदी, क़ुव्वत और तदबीर जिस क़दर खुलती है उसी क़दर अपनी नापाकी, आजिज़ी, पस्ती और हमाक़त ज़ाहिर होती है।

चौथा तजरिबा मसीह की पहचान का असर है। जिस क़दर पहचान बढ़ती है उसी क़दर अपनी हालत बदल जाती है।

पाँचवाँ तजरिबा : जिस क़दर उसके साथ ख़ुलूस और यगांगत में इज़ाफ़ा होता है उसी क़दर दुनियावी आफ़ात का हुजूम और उसी क़दर तसल्ली की कसरत होती जाती है। इन सब बातों से हमारी उम्मीद ख़ौफ़ और आरज़ू के दरमियान लटकी नहीं रहती बल्कि पुख़्ता रहती है।

अब नाज़िरीन की ख़िदमत में इलतमास करता हूँ कि ज़रूर ख़ुदा यहाँ है। उसने क़बूलियत का हाथ फैला रखा है। उसके पास आओ। इसकी एक ही राह है यानी दिल की शिकस्तगी और ख़ास्तगी के साथ आओ। तब यह लुत्फ़ पा सकते हैं। इस सूरत में अबदी ज़िंदगी मिलेगी वरना हलाकत है।